

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 66 — पौण्ड्रक, नकली वासुदेव

5 October 2026



करुष देश का एक राजा भगवान् के चिह्नों की नकल धारण कर द्वारका को सन्देश भेजता है कि वासुदेव तो वही है; श्रीकृष्ण उस ढोंगी का उत्तर हँसी से, सुदर्शन से, और अन्त में एक अप्रत्याशित कृपा से देते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस छियासठवें अध्याय में शुकदेवजी राजा परीक्षित को एक ऐसे राजा की कथा सुनाते हैं जो चापलूसी से इतना फूल गया कि स्वयं को परमेश्वर मानने लगा। इस लीला में भागवत का एक शान्त आश्चर्य छिपा है — कैसे प्रभु की नकल करने वाला मनुष्य उन्हीं के स्वरूप में उठा लिया गया।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

- अध्याय: 66 (षट्षष्टितम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: पौण्ड्रक, नकली वासुदेव
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका; काशी (वाराणसी) के सामने का रणक्षेत्र; काशी नगरी
- केंद्रीय विषय: पौण्ड्रक का मिथ्या दावा और वध; उसे भगवान् के स्वरूप की प्राप्ति; सुदक्षिण की अभिचार-अग्नि का सुदर्शन द्वारा नाश
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 1-43
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण संस्करण)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

पैंसठवें अध्याय में बलरामजी नन्द के ब्रज गए, गोपियों को श्रीकृष्ण के सन्देशों से सान्त्वना दी, और वसन्त वहीं बिताया। एक चाँदनी रात उन्होंने यमुना को बुलाया, और जब वह न आई तो हल से उसे खींच लाए, यहाँ तक कि वह क्षमा माँगने लगी। उनकी इसी अनुपस्थिति में यह अध्याय आरम्भ होता है।

एक दूत जो अपने स्वामी को वासुदेव कहता है

शुकदेवजी बोले: हे राजन्, जब बलरामजी ब्रज में थे, तब करुष देश के राजा पौण्ड्रक ने श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजा, जिसके मुख में यह विचित्र घोषणा थी — “वासुदेव मैं हूँ।” चापलूस उसे बहुत समय से पृथ्वी पर अवतीर्ण भगवान् वासुदेव कहते आए थे, और उस अज्ञानी राजा ने, उस बालक की भाँति जिसे दूसरे बालक खेल में राजा बना दें, उनकी चापलूसी को सत्य मान लिया। श्रीकृष्ण के अव्यक्त स्वरूप से अनजान उसने अपना दूत द्वारका भेज दिया।

दूत राजसभा में कमलनयन प्रभु के सामने खड़ा हुआ और अपने स्वामी के शब्द कह सुनाए। “वासुदेव अवतरित हुआ है, और वह मैं हूँ — दूसरा कोई नहीं। संसार के प्राणियों पर दया करने मैं उतरा हूँ। जो उपाधि तुमने धारण कर रखी है वह झूठी है; उसे त्याग दो।”

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।

भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥

vāsudevo 'vatīrṇo 'ham eka eva na cāparaḥ bhūtānām anukampārthaṁ tvaṁ tu mithyābhidhāṁ tyaja

अर्थ: अवतीर्ण वासुदेव केवल मैं ही हूँ, कोई और नहीं; समस्त जीवों पर अनुकम्पा के लिए मैं आया हूँ। अतः तू अपना यह मिथ्या नाम छोड़ दे। (स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 5)

सन्देश एक माँग के साथ समाप्त हुआ: सात्वत-वंशी मूर्खतावश धारण किए हुए उसके चिह्न छोड़कर पौण्ड्रक की शरण में आएँ — अन्यथा उससे युद्ध करें।



पौण्ड्रक का दूत द्वारका की सभा में श्रीकृष्ण के समक्ष अपने स्वामी का एकमात्र सच्चा वासुदेव होने का दावा सुनाता है, और उग्रसेन सहित पूरा दरबार हँसी से गूँज उठता है।

सभा में हँसी

मन्दबुद्धि पौण्ड्रक की यह डींग सुनकर राजा उग्रसेन और सारी सभा ठहाका मारकर हँस पड़ी। फिर प्रभु ने दूत के द्वारा उत्तर दिया। “मूर्ख, जिन चिह्नों की तू डींग हाँकता है, उन्हें मैं अवश्य तुझ पर और तुझे फुलाने वाले तेरे साथियों पर छोड़ूँगा। उस बड़बोले मुख को ढँके हुए तू रणभूमि में मरा पड़ा रहेगा, कंक, गिद्ध और मांसभक्षी पक्षियों से घिरा — और मुझे शरण देने के बदले तू स्वयं कुत्तों की शरण बनेगा।”

दूत ने एक-एक शब्द अपने स्वामी तक पहुँचा दिया। उधर श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर काशी की ओर चल पड़े, जहाँ करुण का राजा अपने मित्र के पास ठहरा था।



दूत के द्वारा उत्तर भेजकर श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर काशी की ओर चल पड़ते हैं, जहाँ करुष का राजा अपने मित्र के पास शरण लिए है।

रणमंच पर एक नट

श्रीकृष्ण के आने की सूचना पाकर महारथी पौण्ड्रक दो अक्षौहिणी सेना लेकर तुरन्त निकला, और उसके पीछे पार्ष्णिर्क्षक बनकर काशिराज तीन अक्षौहिणी के साथ चला। तब श्रीहरि ने पौण्ड्रक को देखा। उसके पास शंख, चक्र, तलवार और गदा थे, शार्ङ्ग जैसा धनुष, वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न, कौस्तुभ की नकल में एक मणि, और वनमाला। वह दो पीले रेशमी वस्त्र, बहुमूल्य मुकुट और चमकते मकराकृति कुण्डल पहने था, और उसकी ध्वजा पर गरुड़ का चिह्न था।

सारा ठाठ इतना बनावटी था कि पौण्ड्रक मंच की रोशनी में इठलाता कोई अभिनेता लगता था, और अपने ही स्वरूप की इस रंगी-पुती नकल को देखकर प्रभु खुलकर हँस पड़े।

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यं वेषं कृत्रिममास्थितम् ।

यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥

dṛṣṭvā tam ātmanas tulyaṁ veṣaṁ kṛtrimam āsthitam yathā naṭaṁ raṅga-gataṁ vijahāsa bhṛśaṁ hariḥ

अर्थ: उसे अपने समान कृत्रिम वेष धारण किए देखकर, मानो कोई नट रंगमंच पर आया हो, श्रीहरि ज़ोर से हँसे। (स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 15)

फिर शत्रु त्रिशूल, गदा, परिघ, शक्ति, प्रास, तलवार और बाणों से उन पर टूट पड़े। श्रीकृष्ण ने हाथी, रथ, घोड़े और पैदल सेना की उस संयुक्त वाहिनी को गदा, खड्ग, चक्र और बाणों से वैसे ही कुचल डाला जैसे युगान्त की अग्नि प्राणियों के एक-एक वर्ग को क्रमशः भस्म करती है। रथों, घोड़ों, हाथियों और मनुष्यों के मलबे से पटा वह मैदान भूतपति की क्रीड़ा-भूमि-सा भयानक हो उठा; फिर भी वीरों के लिए वह आनन्ददायक था।

प्रभु अपना वचन निभाते हैं

अब श्रीकृष्ण ने स्वयं पौण्ड्रक को सम्बोधित किया। “अरे पौण्ड्रक! तूने चाहा था कि मैं अपने चिह्न त्याग दूँ — लो, मैं उन्हें तुझ पर छोड़ता हूँ। तूने मुझसे अपना नाम छोड़ने को कहा — किन्तु वह नाम तुझी से छुड़वाया जाएगा। और तूने मुझे अपनी शरण में बुलाया, सो यदि मुझे युद्ध की इच्छा न होती तो मैं आज ही प्रसन्नतापूर्वक ऐसा कर लेता।”

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।

व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥

tyājayaṣye 'bhidhānaṁ me yat tvayājña mṛṣā dhṛtam vrajāmi śaraṇaṁ te 'dya yadi necchāmi saṁyugam

अर्थ: हे अज्ञानी, मेरा जो नाम तूने झूठ-मूठ धारण कर रखा है, उसे मैं तुझसे छुड़वाऊँगा। और तेरी माँग के विषय में — मैं आज तेरी शरण अवश्य लेता, यदि मुझे संग्राम की इच्छा न होती। (स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 20)

इस प्रकार उसे धिक्कारकर प्रभु ने तीखे बाणों से पौण्ड्रक का रथ चूर-चूर कर दिया और चक्र से उसका सिर वैसे ही काट गिराया जैसे इन्द्र ने वज्र से पर्वतों के पंख काटे थे। उसी प्रकार उन्होंने बाणों से काशिराज का सिर काटकर काशी नगरी के भीतर जा गिराया, जैसे वायु कमल की कली उड़ा ले जाती है। ईर्ष्यालु पौण्ड्रक और उसके मित्र का अन्त कर श्रीकृष्ण द्वारका लौटे, और सिद्धगण उनकी कथाओं का अमृत गाते रहे।



सुदर्शन ढोंग का अन्त करता है: पौण्ड्रक का रथ टूटा पड़ा है और उसके नकली राजचिह्न बिखरे हैं — झूठा नाम ठीक वैसे ही छीन लिया गया जैसे प्रभु ने कहा था।

पौण्ड्रक के अन्त में छिपी गुप्त कृपा

यहाँ शुकदेवजी परीक्षित को वह बात बताते हैं जो कोई रणभूमि प्रकट नहीं कर सकती। पौण्ड्रक ने प्रभु के चिह्न अहंकार में धारण किए थे, किन्तु उन्हें धारण करने के लिए उसने दिन-प्रतिदिन अपना मन प्रभु के स्वरूप पर टिकाए रखा था। गलत प्रेरणा से ही सही, उस निरन्तर चिन्तन ने उसके कर्मों की हर गाँठ जला दी — और क्योंकि उसके मन के सामने का रूप स्वयं श्रीहरि का था, मृत्यु पर वह उसी में लीन हो गया।

स नित्यं भगवद्भ्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।

बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥

sa nityam bhagavad-dhyāna- pradhvastākṣhila-bandhanaḥ bibhrāṇaś ca hare rājan svarūpaṁ tan-mayo 'bhavat

अर्थ: हे राजन्, भगवान् के नित्य ध्यान से पौण्ड्रक के समस्त बन्धन नष्ट हो चुके थे; और श्रीहरि का ही रूप धारण करने के कारण वह तन्मय होकर उन्हीं में मिल गया। (स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 24)

यही इस अध्याय का तात्त्विक हृदय है। प्रभु की कृपा स्मरण का उत्तर देती है, केवल उसके पीछे की नीयत का नहीं। श्रीकृष्ण ने किसी प्रतिद्वन्द्वी को दण्ड देने के लिए पौण्ड्रक का सिर नहीं काटा — जो सबके आत्मा हैं, उनका प्रतिद्वन्द्वी हो ही नहीं सकता। उन्होंने झूठा नाम और झूठा दावा काटा — बस वही दो चीज़ें जो उनके स्वरूप से भरे एक मन और उस स्वरूप के बीच खड़ी थीं। यदि प्रभु की मात्र नकल करने वाले मन को उनका सारूप्य मिला, तो प्रेम से उन्हें स्मरण करने वाले मन की प्रतीक्षा में क्या होगा?

काशी का शोक और सुदक्षिण की प्रतिज्ञा

इधर काशी के राजप्रासाद के द्वार पर कुण्डलों से सजा एक सिर आ गिरा था। लोग सोचने लगे कि यह किसका है और कैसे आया। अपने राजा को पहचानते ही उसकी रानियाँ, पुत्र, बन्धु-बान्धव और नगरवासी विलाप कर उठे, “हाय स्वामी, हाय नाथ, हाय राजन् — हम तो मारे गए!”

राजा के पुत्र सुदक्षिण ने पिता की अन्त्येष्टि की और संकल्प लिया कि पिता के हत्यारे को मारकर ही वह पितृ-ऋण चुकाएगा। अपने कुल-पुरोहित के साथ उसने परम समाधि से महेश्वर, भगवान् शिव की आराधना की, और अविमुक्त क्षेत्र काशी में प्रसन्न होकर शिवजी ने वर देना चाहा। “मुझे वह उपाय बताइए जिससे मैं अपने पिता के हन्ता को मार सकूँ,” सुदक्षिण ने कहा। “मैं यही एक वर चाहता हूँ।”

शिवजी ने उत्तर दिया: “ब्राह्मणों के साथ अभिचार-विधि से — जो विनाश के लिए प्रयुक्त होती है — दक्षिणाग्नि की उपासना करो। प्रमथगणों से घिरी वह अग्नि ऐसे किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध तुम्हारा संकल्प सिद्ध करेगी जो ब्राह्मणों का भक्त न हो।” यह आदेश पाकर सुदक्षिण ने व्रत रखा और अपना काला अनुष्ठान श्रीकृष्ण पर साध दिया।



मारे गए पिता के शोक में डूबा सुदक्षिण अविमुक्त क्षेत्र में गहरी समाधि से शिवजी की आराधना करता है और काशिराज के हन्ता को मारने का उपाय माँगता है।

द्वारका पर अभिचार-अग्नि का आक्रमण

अनुष्ठान पूरा होते ही अग्निकुण्ड से एक अत्यन्त भयानक मूर्तिमान् अग्नि उठी। उसके बाल, दाढ़ी और मूँछें तपे तौँबे-सी लाल थीं; आँखें अंगारे उगलती थीं; दाढ़ों और तनी भौंहों से उसका मुख कठोर था; नग्न शरीर से लपटें फूट रही थीं, और हाथ में जलता त्रिशूल घुमा रही थी। ताड़-सी लम्बी टाँगों से धरती कँपाती, दिशाओं को झुलसाती और भूतों से घिरी वह द्वारका की ओर दौड़ पड़ी।

उस अभिचार-अग्नि को आती देख द्वारकावासी वैसे ही भयभीत हो गए जैसे दावानल के सामने हिरन। वे दौड़कर प्रभु के पास पहुँचे, जो अपनी सभा में चौसर खेल रहे थे, और पुकारे, “रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, हे त्रिलोकेश, इस अग्नि से जो नगर को जलाने ही वाली है!” उनकी व्याकुलता सुनकर और अपने जनों का भय देखकर श्रीकृष्ण ज़ोर से हँसे और बोले, “डरो मत; मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।”

सुदर्शन ज्वाला को वापस भेजता है

सब प्राणियों के भीतर-बाहर के साक्षी सर्वव्यापी प्रभु ने तुरन्त जान लिया कि यह एक कृत्या है — शिवजी के अनुष्ठान से जन्मी विनाशक शक्ति — और अपने पास खड़े चक्र को उसे नष्ट करने की आज्ञा दी। सुदर्शन उठा, करोड़ सूर्यों-सा दीप्त, प्रलयाग्नि-सा धधकता, अपने तेज से आकाश, दिशाओं, स्वर्ग और पृथ्वी को भरता हुआ, और उस तान्त्रिक ज्वाला पर टूट पड़ा।

तत् सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।

स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥

tat sūrya-koṭi-pratimam sudarśanam jājvalyamānam pralayānala-prabham sva-tejasā kham kakubho 'tha rodasī cakram mukundāstram athāgnim ārdayat

अर्थ: मुकुन्द का वह अस्त्र सुदर्शन, करोड़ों सूर्यों के समान, प्रलयाग्नि-सा जाज्वल्यमान, अपनी ज्योति से आकाश, दिशाओं, द्युलोक और भूलोक को प्रकाशित कर उस अग्नि को कुचल गया। (स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 39)

चक्रपाणि के अस्त्र-तेज से पीछे धकेली गई कृत्या अपना मुख भंग किए लौट पड़ी और वाराणसी पहुँचकर उसे प्रज्वलित करने वाले सुदक्षिण तथा उसके सभी ऋत्विजों को भस्म कर गई। सुदर्शन उसके पीछे नगर में घुसा और गोपुरों, सभाभवनों, बाज़ारों और कोषों सहित समूची वाराणसी को राख कर दिया। फिर विष्णु का चक्र द्वारका लौट आया और उन श्रीकृष्ण के पास पुनः खड़ा हो गया जिनका हर कर्म बिना श्रम के सिद्ध होता है।



सुदर्शन के तेज से पराजित अभिचार-अग्नि पीठ दिखाकर वाराणसी की ओर लौट चलती है, जहाँ वह उन्हीं पुरोहितों को भस्म करेगी जिन्होंने उसे जगाया था।

श्रवण का फल

अध्याय श्रोता को दिए इस वचन के साथ समाप्त होता है।

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमःश्लोकविक्रमम् ।

समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

ya enam śrāvayen martya uttamaḥ-śloka-vikramam samāhito vā śṛṇuyāt sarva-pāpaiḥ pramucyate

अर्थ: जो मनुष्य उत्तमश्लोक भगवान् के इस पराक्रम को सुनाता है, अथवा एकाग्र मन से सुनता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 66, श्लोक 43)

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. चापलूसी मनुष्य को भुला देती है कि वह क्या है। पौण्ड्रक का भ्रम उन दरबारियों से आरम्भ हुआ जो उसे ईश्वर कहते रहे जब तक उसने मान न लिया। भक्त अहंकार को फुलाने वाली प्रशंसा पर अविश्वास करता है।
2. प्रभु के चिह्न उधार नहीं लिए जा सकते। शंख, चक्र, गदा और श्रीवत्स उन्हीं के हैं जिनके स्वभाव को वे व्यक्त करते हैं। उस स्वभाव के बिना धारण किए जाने पर वे मनुष्य को रंगमंच का नट बना देते हैं।
3. प्रभु उन्हें कहे गए हर शब्द का मान रखते हैं, मूर्ख के शब्द का भी। श्रीकृष्ण ने जो शस्त्र त्यागने को कहे गए उन्हें फेंका, नाम पौण्ड्रक से छुड़वाया, और कहा कि युद्ध की इच्छा न होती तो शरण भी स्वीकार कर लेते।
4. प्रभु का स्मरण नीयत चाहे जो हो, पवित्र करता है। अहंकार में किया गया पौण्ड्रक का निरन्तर स्वरूप-ध्यान भी उसके बन्धन तोड़ गया और उसे प्रभु का सारूप्य दे गया।
5. प्रभु के अपनों पर किया गया वार लौटकर करने वाले पर पड़ता है। श्रीकृष्ण के विरुद्ध प्रज्वलित कृत्या द्वारा का को छू न सकी और सुदक्षिण तथा उसके पुरोहितों को ही भस्म कर गई।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय के बाद हृदय में जो टिकता है वह ढोंगियों और अग्नि की कथा के भीतर छिपी एक विचित्र कोमलता है। पौण्ड्रक वासुदेव बनना चाहता था, और कथा का हर मोड़ उसका उपहास करता दिखता है — हँसती सभा, नट का वेष, पर्वत के पंख-सा उड़ा दिया गया सिर। फिर भी शुकदेवजी प्रकट करते हैं कि वह ढोंगी अनजाने ही एक ध्यानी था: प्रभु के चिह्न धारण करने के लिए उसे प्रभु का स्वरूप मन के सामने रखना पड़ा, और प्रभु ने वह चिन्तन रख लिया और केवल झूठ फेंक दिया। यह हमें विनम्र करता है, क्योंकि हमारी अपनी भक्ति भी प्रायः दिखावे और भटकाव से मिली-जुली होती है। प्रभु हमें पवित्र करना आरम्भ करने से पहले हमारी नीयत के शुद्ध होने की प्रतीक्षा नहीं करते; हममें अपना जितना अंश पाते हैं उसे स्वीकार कर उसी से काम चलाते हैं। उन पर छोड़ी गई अग्नि छोड़ने वाले के पास लौट गई, किन्तु उन पर टिका ध्यान, एक ढोंगी का ध्यान भी, उन्हीं के पास लौटकर सदा के लिए सुरक्षित हो गया।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज कुछ क्षण निकालकर — किसी चित्र में, विग्रह में, या केवल मन में — प्रभु के स्वरूप को ध्यान से देखिए: श्याम वर्ण, पीताम्बर, श्रीवत्स, शंख, चक्र, गदा और पद्म। बिना कुछ माँगे मन को वहीं विश्राम करने दीजिए, फिर धीरे से जपिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

इस अध्याय में शुकदेवजी दिखाते हैं कि प्रभु सबसे विचित्र शत्रु से — उस मनुष्य से जो स्वयं को वही बताता था — कैसे पूरी तरह निपटते हैं। डींग सुधर्मा सभा में हँसी में उड़ी, वेष रणभूमि में हँसी का पात्र बना, झूठा नाम उसे धारण करने वाले सिर के साथ छिन गया, और प्रतिशोध में जगाया गया तन्त्र अपने ही रचयिताओं को खा गया। फिर भी जो सत्य यह अध्याय हमें साथ ले जाने को कहता है वह सबसे कोमल है: जिस ढोंगी ने प्रभु का स्वरूप सदा आँखों के सामने रखा, वह उसी स्वरूप में समा लिया गया। हम भी उसे प्रेम से अपनी आँखों के सामने रखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण संस्करण), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 66।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-66-paundraka-the-false-vasudeva-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट